

## Chapter अठारह

### राजा ययाति को यौवन की पुनःप्राप्ति

इस अध्याय में नहुष के पुत्र राजा ययाति की कथा का वर्णन हुआ है। ययाति के पाँच पुत्रों में से सबसे छोटे पूरु ने ययाति की वृद्धावस्था स्वीकार की।

जब नहुष को अजगर बनने का शाप मिल गया तो उसके छः पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र यति ने संन्यास ले लिया। फलस्वरूप बाकी पुत्रों में से बड़े पुत्र ययाति को राजगद्दी पर बैठाया गया। दैववश ययाति ने शुक्राचार्य की बेटी से व्याह कर लिया। शुक्राचार्य ब्राह्मण था और ययाति क्षत्रिय था; तो भी ययाति ने उसकी बेटी से शादी कर ली। शुक्राचार्य की बेटी देवयानी की सखी का नाम शर्मिष्ठा था जो वृषपर्वा की पुत्री थी। राजा ययाति ने शर्मिष्ठा के साथ भी विवाह कर लिया। इस विवाह की कथा इस प्रकार है—

एक बार शर्मिष्ठा अपनी हजारों सखियों के साथ जलविहार कर रही थी और देवयानी भी वहीं थी। जब युवतियों ने शिवजी को उमा समेत बैल पर सवार देखा तो उन्होंने तुरन्त अपने वस्त्र पहन लिये, किन्तु शर्मिष्ठा भूल से देवयानी के कपड़े पहन बैठी। इस पर देवयानी अत्यन्त क्रुद्ध हुई और उसने शर्मिष्ठा को खूब झिड़का। फलतः वह भी क्रुद्ध होकर गाली देने लगी और देवयानी को उसने एक कुएँ में धकेल दिया। दैवयोग से राजा ययाति उस कुएँ पर पानी पीने आये और देवयानी को देखकर उसे बाहर निकाला। फलतः देवयानी ने महाराज ययाति को पति रूप में स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् देवयानी रोती पीटती अपने पिता के पास गई और उसने शर्मिष्ठा की करतूत कह सुनाई। यह घटना सुनकर शुक्राचार्य अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने शर्मिष्ठा के पिता वृषपर्वा को दण्डित करना चाहा, किन्तु वृषपर्वा ने शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाकर भेंट करके शुक्राचार्य को शान्त किया। इस तरह शर्मिष्ठा दासी बनकर देवयानी की ससुराल में गई। जब उसकी सखी देवयानी को पुत्र-प्राप्ति हुई तो उसे भी पुत्र पाने की इच्छा हुई। अतएव गर्भाधान का उचित अवसर पाकर उसने ययाति से संभोग करने की प्रार्थना की। जब शर्मिष्ठा भी गर्भवती हो गई तो देवयानी को ईर्ष्या हुई। क्रोध में आकर वह तुरन्त अपने मायके चली गई और वहाँ अपने पिता से सारी बातें कह सुनाई। शुक्राचार्य पुनः कुपित हुए और उन्होंने ययाति को वृद्ध होने का शाप दे दिया, किन्तु जब ययाति ने दयाकी भीख माँगी तो शुक्राचार्य ने उसे यह वर दिया कि वह अपनी वृद्धावस्था तथा अशक्तता को

किसी युवक से बदल सकता है। ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु से यौवन लेकर अपनी वृद्धावस्था उसे दे दी और इस तरह वह युवतियों के साथ भोग-विलास करने लगा।

श्रीशुक उवाच

यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ।

षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; यतिः—यति; ययातिः—ययाति; संयातिः—संयाति; आयतिः—आयति; वियतिः—वियति; कृतिः—कृति; षट्—छः; इमे—ये सभी; नहुषस्य—राजा नहुष के; आसन्—थे; इन्द्रियाणि—छः इन्द्रियों; इव—सदृश; देहिनः—देहधारी का।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, जिस तरह देहधारी आत्मा के छह इन्द्रियाँ होती हैं उसी तरह राजा नहुष के छह पुत्र थे जिनके नाम थे यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति तथा कृति।

राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ।

यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

राज्यम्—राज्य; न ऐच्छत्—स्वीकार नहीं किया; यतिः—ज्येष्ठ पुत्र, यति ने; पित्रा—अपने पिता द्वारा; दत्तम्—दिया गया; तत्-परिणाम-वित्—राजा के शक्तिशाली होने का फल जानते हुए; यत्र—जहाँ; प्रविष्टः—घुसकर; पुरुषः—व्यक्ति; आत्मानम्—आत्म-साक्षात्कार; न—नहीं; अवबुध्यते—गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करके समझेगा।

जब कोई मनुष्य राजा या सरकार के अध्यक्ष के पद को ग्रहण करता है तो वह आत्म-साक्षात्कार का अर्थ नहीं समझ पाता। यह जानकर, नहुष के सबसे बड़े पुत्र यति ने शासन सँभालना स्वीकार नहीं किया यद्यपि उसके पिता ने राज्य को उसे ही सौंपा था।

तात्पर्य : आत्म-साक्षात्कार मानव सभ्यता का मूल उद्देश्य है और जो लोग सतोगुणी हैं तथा जिनमें ब्राह्मण-गुणों का विकास हुआ होता है वे इसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करते हैं। सामान्यतया क्षत्रिय उन भौतिक गुणों से सम्पन्न होते हैं जो भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करने तथा इन्द्रियतृप्ति भोगने के अनुकूल होते हैं, किन्तु जो लोग आध्यात्मिक रूप से बढ़े-चढ़े रहते हैं वे भौतिक ऐश्वर्य के प्रति कोई रुचि नहीं दिखलाते। निस्सन्देह, वे आत्म-साक्षात्कार में आध्यात्मिक जीवन-विकास के लिए न्यूनतम आवश्यकताएँ स्वीकार करते हैं। यहाँ विशेष उल्लेख हुआ है कि यदि कोई राजनीतिक जीवन में प्रवेश करता है, विशेषकर वर्तमान

युग में, तो मानव सिद्धि उसके हाथ से जाती रहती है। तो भी यदि कोई *श्रीमद्भागवत* को सुने तो वह सर्वोच्च सिद्धि पा सकता है। यह सुनना *नित्यं भागवतसेवया* कहा गया है। महाराज परीक्षित राजनीति में लिप्त थे, किन्तु चूँकि अपने जीवन के अन्तकाल में उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से *श्रीमद्भागवत* सुनी अतएव उन्हें सरलता से सिद्धि मिल गई। इसीलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सुझाव दिया है—

*स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिः*

*ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्*

(भागवत १०.१४.३)

कोई चाहे सतोगुणी हो या रजोगुणी अथवा तमोगुणी, यदि वह नियमपूर्वक किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से *श्रीमद्भागवत* सुनता है तो वह भवबन्धन से छूट जाता है।

पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणादिद्वजैः ।

प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

पितरि—पिता के; भ्रंशिते—पतित किए जाने पर; स्थानात्—स्वर्गलोक से; इन्द्राण्याः—इन्द्र की पत्नी शची का; धर्षणात्—अपमान करने से; द्विजैः—ब्राह्मणों से ( शिकायत करने पर उनके द्वारा ); प्रापिते—नीचे गिराये जाने पर; अजगरत्वम्—अजगर का जीवन; वै—निस्सन्देह; ययातिः—ययाति नामक पुत्र; अभवत्—हुआ; नृपः—राजा।

चूँकि ययाति के पिता नहुष ने इन्द्र की पत्नी शची को छेड़ा था, अतएव शची के अगस्त्य तथा अन्य ब्राह्मणों से शिकायत करने पर इन ब्राह्मणों ने नहुष को शाप दिया कि वह स्वर्ग से गिरकर अजगर बन जाय। फलतः ययाति राजा बना।

चतसृष्वदिशद्विक्षु भ्रातृभ्राता यवीयसः ।

कृतदारो जुगोपोर्वी काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

चतसृषु—चारों; आदिशत्—शासन करने की अनुमति दी; दिक्षु—दिशाओं में; भ्रातृन्—चारों भाइयों को; भ्राता—ययाति; यवीयसः—तरुण; कृत-दारः—विवाह किया; जुगोप—शासन किया; ऊर्वीम्—संसार पर; काव्यस्य—शुक्राचार्य की लड़की; वृषपर्वणः—वृषपर्वा की पुत्री।

राजा ययाति के चार छोटे भाई थे जिन्हें उसने चारों दिशाओं में शासन चलाने की अनुमति दे दी थी। ययाति ने शुक्राचार्य की बेटी देवयानी से एवं वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह किया और वह

सारी पृथ्वी पर शासन करने लगा।

श्रीराजोवाच

ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ।

राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने जिज्ञासा की; ब्रह्म-ऋषिः—ब्राह्मणों में श्रेष्ठ; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; काव्यः—शुक्राचार्य; क्षत्र-बन्धुः—क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित; च—भी; नाहुषः—राजा ययाति; राजन्य-विप्रयोः—ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का; कस्मात्—कैसे; विवाहः—विवाह; प्रतिलोमकः—प्रथा के विपरीत।

महाराज परीक्षित ने कहा : शुक्राचार्य अत्यन्त शक्तिशाली ब्राह्मण थे और महाराज ययाति क्षत्रिय थे। अतएव मैं यह जानने का इच्छुक हूँ कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के बीच यह प्रतिलोम विवाह कैसे सम्पन्न हुआ ?

तात्पर्य : वैदिक पद्धति के अनुसार परस्पर क्षत्रियों में या परस्पर ब्राह्मणों में विवाह होना सर्वसामान्य प्रथा है। यदि कभी विभिन्न वर्णों के बीच विवाह होते हैं तो ये दो प्रकार के होते हैं—*अनुलोम* तथा *प्रतिलोम*। एक ब्राह्मण तथा क्षत्रियपुत्री के मध्य विवाह की अनुमति है। यह अनुलोम है, किन्तु एक क्षत्रिय तथा ब्राह्मणपुत्री के मध्य विवाह प्रतिलोम है और सामान्यतया इसकी अनुमति नहीं है। इसीलिए महाराज परीक्षित जानने को उत्सुक थे कि शुक्राचार्य जैसे शक्तिशाली ब्राह्मण ने प्रतिलोम विवाह किस प्रकार स्वीकार किया। वे इस असामान्य विवाह के कारण को जानने के लिए उत्सुक थे।

श्रीशुक उवाच

एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ।

सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥

देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसङ्कुले ।

व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एकबार; दानव-इन्द्रस्य—वृषपर्वा की; शर्मिष्ठा—शर्मिष्ठा; नाम—नामक; कन्यका—कन्या; सखी-सहस्र-संयुक्ता—अपनी हजारों सखियों के साथ-साथ; गुरु-पुत्र्या—गुरु शुक्राचार्य की पुत्री सहित; च—भी; भामिनी—सरलता से चिढ़ने वाली; देवयान्या—देवयानी सहित; पुर-उद्याने—महल के बगीचे में; पुष्पित—फूलों से युक्त; द्रुम—सुन्दर वृक्ष; सङ्कुले—सँटे हुए; व्यचरत्—टहल रही थी; कल-गीत—मधुर ध्वनि से; अलि—भौरा; नलिनी—कमलिनियों से युक्त; पुलिने—ऐसे बगीचे में; अबला—निर्दोष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एकबार वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा, जो अबोध, किन्तु स्वभाव से

क्रोधी थी, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा उसकी सैकड़ों सखियों के साथ राजमहल के बगीचे में घूम रही थी। यह बगीचा कमलिनियों तथा फूल-फल के वृक्षों से पूर्ण था और उसमें मधुर गीत गाते पक्षी तथा भौरें निवास कर रहे थे।

ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ।  
तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्नुः सिञ्चतीर्मिथः ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

ताः—वे; जल-आशयम्—झील पर; आसाद्य—पहुँच कर; कन्याः—सारी लड़कियाँ; कमल-लोचनाः—कमल की पंखुड़ियों जैसे नेत्रों वाली; तीरे—किनारे पर; न्यस्य—रख कर; दुकूलानि—अपने-अपने वस्त्र; विजह्नुः—खेलने लगीं; सिञ्चतीः—जल फेंककर; मिथः—परस्पर।

जब तरुणी, कमलनयनी लड़कियाँ जलाशय के तीर पर आईं तो उन्होंने स्नान का आनन्द लेना चाहा। फलतः किनारे पर अपने वस्त्र रखकर वे एक दूसरे पर जल उछाल कर जल-क्रीड़ा करने लगीं।

वीक्ष्य ब्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ।  
सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

वीक्ष्य—देखकर; ब्रजन्तम्—जाते हुए; गिरिशम्—शिवजी को; सह—साथ; देव्या—पार्वती के; वृष-स्थितम्—बैल के ऊपर आसीन; सहसा—एकाएक; उत्तीर्य—जल से निकल कर; वासांसि—वस्त्र; पर्यधुः—शरीर पर पहन लिया; व्रीडिताः—लज्जित होकर; स्त्रियः—युवतियों ने।

जलक्रीड़ा करते हुए लड़कियों ने सहसा शिवजी को ऊपर से जाते देखा जो अपने बैल की पीठ पर अपनी पत्नी पार्वती समेत आसीन थे। नंगी होने के कारण लज्जित वे लड़कियाँ तुरन्त जल से बाहर निकल आईं और उन्होंने अपने वस्त्रों से अपने-अपने शरीर ढक लिये।

शर्मिष्ठाजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ।  
स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री ने; अजानती—अनजाने; वासः—वस्त्र; गुरु-पुत्र्याः—अपने गुरु की पुत्री देवयानी का; समव्ययत्—पहन लिया; स्वीयम्—अपना; मत्वा—मानकर; प्रकुपिता—क्रुद्ध; देवयानी—शुक्राचार्य की पुत्री ने; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

शर्मिष्ठा ने अनजाने ही देवयानी का वस्त्र पहन लिया जिससे देवयानी को क्रोध आ गया और वह

इस प्रकार बोली ।

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ।  
अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥

**शब्दार्थ**

अहो—अरे; निरीक्ष्यताम्—देखो तो; अस्याः—इसका ( शर्मिष्ठा का ); दास्याः—हमारी दासी की तरह; कर्म—कार्य; हि—निस्सन्देह;  
असाम्प्रतम्—बिना किसी शिष्टाचार के; अस्मद्-धार्यम्—मेरे वस्त्र को; धृतवती—उसने पहन लिया; शुनी इव—कुत्ते की तरह;  
हविः—घी; अध्वरे—यज्ञ में डालने के निमित्त ।

अरे जरा देखो न इस दासी शर्मिष्ठा की करतूतों को, इसने सारे शिष्टाचार को ताक पर रखकर मेरे वस्त्र धारण कर लिये हैं मानो यज्ञ के निमित्त रखे घी को कोई कुत्ता छीन ले ।

यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ।  
धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाः प्रदर्शितः ॥ १२ ॥  
यान्वन्दन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः ।  
भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥  
वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पितासुरः ।  
अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥

**शब्दार्थ**

यैः—जिन व्यक्तियों के द्वारा; इदम्—यह सारा विश्व; तपसा—तपस्या से; सृष्टम्—उत्पन्न हुआ था; मुखम्—मुँह; पुंसः—परम पुरुष का; परस्य—दिव्य; ये—जो ( हैं ); धार्यते—सदैव उत्पन्न होता है; यैः—जिन व्यक्तियों के द्वारा; इह—यहाँ; ज्योतिः—ब्रह्मज्योतिः; शिवः—शुभ; पन्थाः—मार्ग; प्रदर्शितः—दिखलाया गया; यान्—जिनको; वन्दन्ति—वन्दना करते हैं; उपतिष्ठन्ते—सम्मान करते तथा अनुगमन करते हैं; लोक-नाथाः—विभिन्न लोकों के निर्देशक; सुर-ईश्वराः—देवतागण; भगवान्—भगवान्; अपि—भी; विश्व-आत्मा—परमात्मा; पावनः—पवित्र करने वाला; श्री-निकेतनः—लक्ष्मी के पति; वयम्—हम ( हैं ); तत्र अपि—अन्य ब्राह्मणों से भी बड़े; भृगवः—भृगुवंशी; शिष्यः—शिष्य; अस्याः—उसका; नः—हमारा; पिता—पिता; असुरः—असुर; अस्मद्-धार्यम्—हमारे पहनने के निमित्त; धृतवती—पहन लिया है; शूद्रः—अब्राह्मण सेवक; वेदम्—वेद; इव—सदृश; असती—जो सती न हो, कुलटा ।

हम उन योग्य ब्राह्मणों में से हैं जिन्हें भगवान् का मुख माना गया है । ब्राह्मणों ने अपनी तपस्या से समग्र विश्व को उत्पन्न किया है और वे परम सत्य को अपने अन्तःकरण में सदैव धारण करते हैं । उन्होंने सौभाग्य के पथ का निर्देशन किया है जो कि वैदिक सभ्यता का पथ है । वे इस जगत में एकमात्र पूजनीय हैं अतएव उनकी स्तुति की जाती है और विभिन्न लोकों के नायक बड़े से बड़े देवता भी उनकी पूजा करते हैं—यहाँ तक कि सब को पवित्र करने वाले, लक्ष्मी देवी के पति, परमात्मा द्वारा भी वे पूजित हैं और हम तो इसलिए भी अधिक पूज्य हैं क्योंकि हम भृगुवंशी हैं । यद्यपि इस स्त्री का पिता असुर होकर हमारा शिष्य है तो भी इसने मेरे वस्त्र को उसी तरह धारण कर

लिया है जिस तरह कोई शूद्र वैदिक ज्ञान का भार सँभाले।

एवं क्षिपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ।  
रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५ ॥

**शब्दार्थ**

एवम्—इस प्रकार; क्षिपन्तीम्—अपमानित की गई; शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री ने; गुरु-पुत्रीम्—गुरु शुक्राचार्य की पुत्री से; अभाषत—कहा; रुषा—क्रुद्ध होने से; श्वसन्ती—गहरी साँस लेती; उरङ्गी इव—सर्पिणी की तरह; धर्षिता—कुचली हुई, अपमानित; दष्ट-दत्-छदा—अपने दाँतों से अपने होठ चबाती।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : शर्मिष्ठा को जब इस तरह कठोर शब्दों से डाँटा गया तो वह अत्यधिक क्रुद्ध हो उठी। सर्पिणी की तरह गहरी साँस छोड़ती और अपने निचले होठ को अपने दाँतों से चबाती वह शुक्राचार्य की पुत्री से इस तरह बोली।

आत्मवृत्तमविज्ञाय कथसे बहु भिक्षुकि ।  
किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥

**शब्दार्थ**

आत्म-वृत्तम्—अपनी स्थिति; अविज्ञाय—न समझकर; कथसे—तुम पागलों की तरह बातें कर रही हो; बहु—अधिक; भिक्षुकि—भिखारिन; किम्—क्या; न—नहीं; प्रतीक्षसे—प्रतीक्षा करती हो; अस्माकम्—हमारे; गृहान्—घर पर; बलिभुजः—कौवे; यथा—जिस तरह।

अरे भिखारिन, जब तुम्हें अपनी स्थिति का पता नहीं है तो व्यर्थ ही क्यों इतना बोल रही हो? क्या तुम लोग अपनी जीविका के लिए हम पर आश्रित रहकर कौवों की भाँति हमारे घर पर प्रतीक्षा नहीं करते हो?

तात्पर्य : कौवे का कोई स्वतंत्र जीवन नहीं होता; वे गृहस्थों द्वारा कूड़ादानों में फेंके गये जूठन पर पूरी तरह आश्रित होते हैं। ब्राह्मण अपने शिष्यों पर आश्रित रहते हैं अतएव जब शर्मिष्ठा देवयानी द्वारा बुरी तरह अपमानित की गई तो उसने देवयानी को कौवे-जैसे भिक्षुकों के परिवार से सम्बन्धित बतलाया। स्त्रियों का स्वभाव है कि थोड़ा सा उकसाने पर भी वे वाक्युद्ध करने लगती हैं। जैसा हम इस घटना में देख सकते हैं, उनका ऐसा स्वभाव बहुत लम्बे समय से चला आ रहा है।

एवंविधैः सुपुरुषैः क्षिप्त्वाचार्यसुतां सतीम् ।  
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वासश्चादाय मन्युना ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधैः—इस प्रकार से; सु-परुषैः—अत्यन्त अप्रिय वचनों द्वारा; क्षिप्त्वा—अपमानित होकर; आचार्य-सुताम्—शुक्राचार्य की पुत्री को; सतीम्—देवयानी को; शर्मिष्ठा—शर्मिष्ठा ने; प्राक्षिपत्—फेंक दिया; कूपे—कुएँ में; वासः—वस्त्र; च—तथा; आदाय—लेकर; मन्युना—क्रोध में आकर।

ऐसे अप्रिय वचनों का उपयोग करते हुए शर्मिष्ठा ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को फटकारा।

उसने क्रोध में आकर देवयानी के वस्त्र छीन लिए और उसे एक कुएँ में धकेल दिया।

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ।

प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उसके; गतायाम्—चले जाने पर; स्व-गृहम्—अपने घर; ययातिः—राजा ययाति; मृगयाम्—शिकार करने; चरन्—घूमते हुए; प्राप्तः—आया; यदृच्छया—संयोगवश; कूपे—कुएँ में; जल-अर्थी—जल पीने की इच्छा से; ताम्—उसको ( देवयानी को ); ददर्श—देखा; ह—निस्सन्देह।

देवयानी को कुएँ में धकेल कर शर्मिष्ठा अपने घर चली गई। तभी शिकार के लिए निकला राजा

ययाति उस कुएँ पर पानी पीने के लिए आया और संयोगवश देवयानी को देखा।

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ।

गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

दत्त्वा—देकर; स्वम्—अपना; उत्तरम्—उत्तरीय, ऊपरी; वासः—वस्त्र; तस्यै—उस ( देवयानी ) को; राजा—राजा; विवाससे—नग्न होने के कारण; गृहीत्वा—पकड़ कर; पाणिना—हाथ से; पाणिम्—उसके हाथ को; उज्जहार—उद्धार किया; दया-परः—अत्यन्त दयालु।

देवयानी को कुएँ में नग्न देखकर राजा ययाति ने तुरन्त ही अपना ऊपरी वस्त्र उसे दे दिया। उस

पर अत्यन्त दयालु होकर उसने अपने हाथ से उसका हाथ पकड़ कर उसे बाहर निकाला।

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ।

राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरञ्जय ॥ २० ॥

हस्तग्राहोऽपरो मा भूद्गृहीतायास्त्वया हि मे ।

एष ईशकृतो वीर सम्बन्धो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; वीरम्—वीर ययाति से; आह—कहा; औशनसी—उशना कवि या शुक्राचार्य की पुत्री ने; प्रेम-निर्भरया—प्रेम तथा दया से सिक्त; गिरा—वाणी से; राजन्—हे राजा; त्वया—तुम्हारे द्वारा; गृहीतः—अंगीकृत; मे—मेरा; पाणिः—हाथ; पर-पुरञ्जय—अन्यों के राष्यों का विजेता; हस्त-ग्राहः—मेरा हाथ थामने वाला; अपरः—दूसरा; मा—मत; भूत्—होये; गृहीतायाः—स्वीकृत; त्वया—तुम्हारे



द्वारा; हि—निस्सन्देह; मे—मेरा; एषः—यह; ईश-कृतः—दैव द्वारा नियोजित; वीर—हे वीर; सम्बन्धः—सम्बन्ध; नौ—हमारा; न—  
नहीं; पौरुषः—मानवनिर्मित।

देवयानी प्रेमसिक्त शब्दों में राजा ययाति से बोली “हे परम वीर! हे राजा! हे शत्रुओं के नगरों के विजेता! आपने मेरा हाथ थामकर मुझे अपनी विवाहिता पत्नी के रूप में स्वीकार किया है। अब मुझे कोई दूसरा नहीं छूने पाये क्योंकि हमारा यह पति-पत्नी का सम्बन्ध भाग्य द्वारा सम्भव हो सका है, किसी व्यक्ति द्वारा नहीं।

तात्पर्य : देवयानी को कुँएँ से निकालते हुए राजा ययाति ने उसके सौन्दर्य तथा जवानी की अवश्य प्रशंसा की होगी अतएव उसने यह भी पूछा होगा कि तुम किस जाति की हो। तब देवयानी ने तुरन्त उत्तर दिया होगा, “हमारा पहले ही विवाह हो चुका है क्योंकि आपने मेरा हाथ थामा है।” पति तथा पत्नी के हाथों को मिलाना सभी समाजों की स्थायी प्रथा है। अतएव ज्योंही ययाति ने उसका हाथ थामा होगा त्योंही दोनों को विवाहित मान लिया जा सकता है। चूँकि देवयानी वीर ययाति पर मुग्ध थी अतएव उसने प्रार्थना की कि वह न तो अपना मन बदले न किसी अन्य से उसका विवाह होने दे।

यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम ।

न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ।

कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्यमशपं पुरा ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

यत्—चूँकि; इदम्—इस; कूप-मग्नायाः—कुँएँ में गिरी; भवतः—आपकी; दर्शनम्—भेंट; मम—मुझसे; न—नहीं; ब्राह्मणः—योग्य ब्राह्मण; मे—मेरा; भविता—हो सकोगे; हस्त-ग्राहः—पति; महा-भुज—हे शक्तिशाली भुजावाले; कचस्य—कच का; बार्हस्पत्यस्य—विद्वान ब्राह्मण एवं देवों के पुरोहित बृहस्पति के पुत्र के; शापात्—शाप से; यम्—जिसको; अशपम्—मैंने शाप दिया; पुरा—भूतकाल में।

“कुँएँ में गिर जाने के कारण मैं आपसे मिली। निस्सन्देह, यह विधि का विधान था। जब मैंने प्रकाण्ड विद्वान बृहस्पति के पुत्र कच को शाप दिया तो उसने मुझे यह शाप दिया कि तुझे ब्राह्मण पति नहीं प्राप्त हो सकेगा। अतएव हे महाभुज! मेरे किसी ब्राह्मण की पत्नी बनने की कोई सम्भावना नहीं है।”

तात्पर्य : विद्वान पुरोहित बृहस्पति का पुत्र कच शुक्राचार्य का शिष्य था। उसने अपने गुरु से अकाल मृत्युप्राप्त व्यक्ति को जिलाने की कला सीखी थी। यह कला *मृतसञ्जीवनी* कहलाती है और विशेष रूप से युद्ध के समय काम में लाई जाती थी। जब युद्ध होता था तो योद्धाओं की अकाल मृत्यु हो जाती थी, किन्तु

यदि किसी योद्धा का शरीर अक्षत रहता तो वह इस मृतसंजीवनी कला के द्वारा फिर से जीवित किया जा सकता था। यह कला शुक्राचार्य तथा अन्य बहुत से लोगों को ज्ञात थी और बृहस्पति का पुत्र कच इसे सीखने के लिए ही शुक्राचार्य का शिष्य बना था। देवयानी कच को अपना पति बनाना चाहती थी, किन्तु कच, शुक्राचार्य के प्रति सम्मान के कारण, उसे गुरु-पुत्री समझ कर अपने से श्रेष्ठ समझता था अतएव उसने विवाह करने से मना कर दिया। देवयानी ने क्रुद्ध होकर कच को यह शाप दिया कि तुमने मेरे पिता से जो मृतसंजीवनी विद्या सीखी है वह व्यर्थ हो जाय। कच ने भी पलट कर शाप दिया कि उसे ब्राह्मण पति कभी न मिले। चूँकि देवयानी ययाति को चाहती थी, जो क्षत्रिय था अतएव उसने प्रार्थना की कि वह उसे अपनी प्रामाणिक पत्नी के रूप में स्वीकार कर ले। यद्यपि यह प्रतिलोम विवाह था, अर्थात् उच्च कुल की कन्या का निम्न कुल के लड़के से विवाह था, किन्तु उसने कहा कि यह विधाता का विधान है।

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहतमात्मनः ।

मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ययातिः—राजा ययाति; अनभिप्रेतम्—न चाहते हुए; दैव-उपहतम्—विधाता द्वारा की गई व्यवस्था को; आत्मनः—निजी हित; मनः—मन; तु—फिर भी; तत्-गतम्—उससे आकृष्ट होकर; बुद्ध्वा—ऐसी बुद्धि द्वारा; प्रतिजग्राह—स्वीकार कर लिया; तत्-वचः—देवयानी के शब्द।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : चूँकि शास्त्रों द्वारा ऐसे विवाह की अनुमति नहीं है अतएव राजा ययाति को यह अच्छा नहीं लगा, किन्तु विधाता द्वारा व्यवस्थित होने तथा देवयानी के सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होने से उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तात्पर्य : वैदिक पद्धति में जिस लड़के तथा लड़की की शादी होनी होती है उनकी कुंडलियों पर उनके माता-पिता विचार करते हैं। यदि ज्योतिष-गणना के अनुसार लड़के तथा लड़की के बीच हर प्रकार का मेल बैठ जाए तो यह संयोग योटक कहलाता था और विवाह हो जाता था। यहाँ तक कि पचास वर्ष पूर्व भी यह पद्धति हिन्दू समाज में प्रचलित थी। कोई लड़का चाहे कितना धनवान क्यों न हो या कोई लड़की चाहे कितनी रूपवती क्यों न हो, इस ज्योतिष-मेल के बिना विवाह नहीं हो सकता था। मनुष्य का जन्म तीन कोटियों में से किसी एक में होता है। ये हैं—देवगण, मनुष्यगण तथा राक्षसगण। विश्व के विभिन्न भागों में देवता तथा राक्षस हैं और मानव समाज में भी कुछ लोग देवताओं के समान हैं तो कुछ राक्षस जैसे हैं।

यदि ज्योतिष-गणना के अनुसार देव तथा राक्षस प्रकृति (गण) में विरोध होता था तो ऐसा विवाह नहीं होता था। इसी प्रकार प्रतिलोम तथा अनुलोम की भी गणनाएँ थीं। मूल-भाव यह था कि यदि लड़का तथा लड़की समान स्तर के हों तो विवाह सुखमय होगा, किन्तु असमानता से दुख ही मिलेगा। चूँकि अब विवाह में इस पर ध्यान नहीं दिया जाता इसीलिए अनेक विवाह-विच्छेद होते हैं। निस्सन्देह, अब तो विवाह-विच्छेद सामान्य बात बन चुकी है जब कि प्राचीन काल में विवाह आजीवन चलता था और स्त्री तथा पुरुष में इतना प्रेम होता था कि पति के मर जाने पर पत्नी अपने पति के साथ स्वेच्छा से मर जाती थी या आजीवन स्वामिभक्त विधवा बनी रहती थी। किन्तु अब ऐसा सम्भव नहीं रह गया क्योंकि मानव समाज पतित होकर पशु-समाज की स्थिति को प्राप्त हो गया है। अब तो केवल समझौते से विवाह सम्पन्न होते हैं।

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुः ( भागवत १२.२.३ ) अभिरुचि का अर्थ है समझौता या स्वीकृति। यदि लड़के तथा लड़की को विवाह स्वीकार हो तो वह विवाह सम्पन्न हो जाता है, किन्तु वैदिक पद्धति का दृढ़ता से पालन न होने पर विवाह का अन्त प्रायः विवाह-विच्छेद में होता है।

गते राजनि सा धीरे तत्र स्म रुदती पितुः ।  
न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

गते राजनि—राजा के चले जाने के बाद; सा—उस ( देवयानी ) ने; धीरे—विद्वान्; तत्र स्म—अपने घर लौटकर; रुदती—रोती हुई; पितुः—अपने पिता के समक्ष; न्यवेदयत्—कह सुनाया; ततः—तत्पश्चात्; सर्वम्—सारा; उक्तम्—कहा गया; शर्मिष्ठया—शर्मिष्ठा द्वारा; कृतम्—किया गया।

तत्पश्चात् जब विद्वान् राजा अपने महल को वापस चला गया तो देवयानी रोती हुई घर लौटी और उसने अपने पिता शुक्राचार्य को शर्मिष्ठा के कारण घटी सारी घटना कह सुनाई। उसने बतलाया कि वह किस तरह कुएँ में धकेली गयी थी किन्तु एक राजा द्वारा बचा ली गई।

दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ।  
स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥

#### शब्दार्थ

दुर्मनाः—अत्यन्त अप्रसन्न होकर; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; काव्यः—शुक्राचार्य ने; पौरोहित्यम्—पुरोहिती कर्म को; विगर्हयन्—धिक्कारते हुए; स्तुवन्—प्रशंसा करते हुए; वृत्तिम्—पेशे को; च—तथा; कापोतीम्—खेत से अन्न बीनने के; दुहित्रा—अपनी पुत्री समेत; सः—वह ( शुक्राचार्य ); ययौ—गया; पुरात्—अपने आवास से।

जब शुक्राचार्य ने देवयानी के साथ घटी घटना सुनी तो वे मन में अत्यन्त दुखी हुए। पुरोहिती वृत्ति को धिक्कारते एवं उच्छ्वृत्ति ( खेत से अन्न बीनने ) की प्रशंसा करते हुए उन्होंने पुत्री सहित अपना घर छोड़ दिया।

**तात्पर्य :** जब ब्राह्मण कपोत अर्थात् कबूतर की वृत्ति ग्रहण करता है तो वह खेत से अन्न बीन कर जीवन-निर्वाह करता है। यह उच्छ्वृत्ति कहलाती है। जो ब्राह्मण उच्छ्वृत्ति अपनाता है वह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि वह भगवान् की कृपा पर पूर्णतया निर्भर रहता है और किसी से कुछ नहीं माँगता। यद्यपि ब्राह्मण या संन्यासी को भिक्षा माँगने की अनुमति प्राप्त है, किन्तु यदि इससे वह बच सके और अपने उदर-भरण के लिए भगवान् की कृपा पर पूर्णतया निर्भर रहे तो वह अच्छा माना जाता है। शुक्राचार्य निश्चय ही अत्यन्त दुखी थे क्योंकि अपनी पुत्री द्वारा शिकायत किये जाने के कारण उन्हें अपने शिष्य के यहाँ भिक्षा माँगने के लिए बाध्य होना पड़ा क्योंकि उन्होंने पुरोहिती वृत्ति स्वीकार कर रखी थी। शुक्राचार्य मन से इस वृत्ति को पसन्द नहीं करते थे, किन्तु चूँकि उन्होंने इसे स्वीकार कर रखा था अतएव अनिच्छित रूप से उन्हें अपने शिष्य के पास अपनी पुत्री की शिकायत का निबटारा करने के लिए जाना पड़ रहा था।

वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ।

गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥

**शब्दार्थ**

वृषपर्वा—असुरों का राजा; तम् आज्ञाय—शुक्राचार्य का मन्तव्य समझकर; प्रत्यनीक—कोई शाप; विवक्षितम्—कहने की इच्छा करते हुए; गुरुम्—गुरु शुक्राचार्य को; प्रसादयत्—तुरन्त प्रसन्न कर लिया; मूर्ध्ना—अपने सिर से; पादयोः—चरणों पर; पतितः—गिर पड़ा; पथि—मार्ग पर।

राजा वृषपर्वा समझ गया कि शुक्राचार्य उसे प्रताड़ित करने या शाप देने आ रहे हैं। फलस्वरूप, इसके पूर्व कि शुक्राचार्य उसके महल में आये, वृषपर्वा बाहर आ गया और मार्ग में ही अपने गुरु के चरणों पर गिर पड़ा तथा उनके रोष को रोकते हुए उन्हें प्रसन्न कर लिया।

क्षणार्धमन्युर्भगवान्शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ।

कामोऽस्याः क्रियतां राजत्रैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥

**शब्दार्थ**

क्षण-अर्ध—कुछ ही क्षण; मन्युः—क्रोध; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; शिष्यम्—अपने शिष्य वृषपर्वा से; व्याचष्ट—कहा; भार्गवः—भृगुवंशी शुक्राचार्य से; कामः—इच्छा; अस्याः—इस देवयानी की; क्रियताम्—पूरी करो; राजन्—हे राजा; न—नहीं; एनाम्—इस लड़की को; त्यक्तुम्—त्यागने के लिए; इह—इस संसार में; उत्सहे—समर्थ हूँ।

शक्तिशाली शुक्राचार्य कुछ क्षणों तक क्रुद्ध रहे, किन्तु प्रसन्न हो जाने पर उन्होंने वृषपर्वा से कहा: हे राजन, देवयानी की इच्छा पूरी कीजिये क्योंकि वह मेरी पुत्री है और मैं इस संसार में न तो उसे छोड़ सकता हूँ न उसकी उपेक्षा कर सकता हूँ।

तात्पर्य : कभी-कभी शुक्राचार्य जैसा महापुरुष अपने पुत्र-पुत्रियों की अवहेलना नहीं कर सकता क्योंकि पुत्र-पुत्रियाँ स्वभावतः पिता पर आश्रित रहती हैं और पिता का उन पर स्नेह होता है। यद्यपि शुक्राचार्य जानते थे कि देवयानी तथा शर्मिष्ठा का झगड़ा बचकाना है लेकिन देवयानी के पिता के रूप में उन्हें अपनी पुत्री का पक्ष लेना पड़ रहा था। यद्यपि वे ऐसा करना नहीं चाहते थे, किन्तु स्नेहवश विवश थे। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि उन्हें राजा की कृपा की याचना नहीं करनी चाहिए थी, किन्तु पुत्री-स्नेह के कारण वे ऐसा करने से अपने को बचा नहीं पाये।

तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ।

पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

तथा इति—जब राजा वृषपर्वा ने शुक्राचार्य के प्रस्ताव को मान लिया; अवस्थिते—जब इस तरह मामला तय हो गया; प्राह—कहा; देवयानी—शुक्राचार्य की पुत्री ने; मनोगतम्—अपनी इच्छा; पित्रा—पिता द्वारा; दत्ता—दिया गया; यतः—चाहे जिस किसी को; यास्ये—मैं जाऊँगी; स-अनुगा—अपनी सखियों सहित; यातु—जाऊँ; माम् अनु—मेरी दासी के रूप में।

शुक्राचार्य के निवेदन को सुनकर वृषपर्वा देवयानी की मनोकामना पूरी करने के लिए राजी हो गया और वह उसके वचनों की प्रतीक्षा करने लगा। तब देवयानी ने अपनी इच्छा इस प्रकार व्यक्त की, “जब भी मैं अपने पिता की आज्ञा से विवाह करूँ तो मेरी सखी शर्मिष्ठा अपनी सखियों समेत मेरी दासी के रूप में मेरे साथ चले।”

पित्रा दत्ता देवयान्यै शर्मिष्ठा सानुगा तदा ।

स्वानां तत्सङ्कटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ।

देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

पित्रा—पिता द्वारा; दत्ता—दी गई; देवयान्यै—देवयानी को; शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री; स-अनुगा—अपनी सखियों सहित; तदा—उस समय; स्वानाम्—अपनी; तत्—वह; सङ्कटम्—कठिन परिस्थिति को; वीक्ष्य—देखकर; तत्—उससे; अर्थस्य—लाभ का; च—भी; गौरवम्—महानता; देवयानीम्—देवयानी को; पर्यचरत्—सेवा की; स्त्री-सहस्रेण—अन्य हजारों स्त्रियों सहित; दास-वत्—दासी के समान।

वृषपर्वा ने बुद्धिमानी के साथ सोचा कि शुक्राचार्य की अप्रसन्नता से संकट आ सकता है और उनकी प्रसन्नता से भौतिक लाभ प्राप्त हो सकता है। अतएव उसने शुक्राचार्य का आदेश शिरोधार्य किया और दास की तरह उनकी सेवा की। उसने अपनी पुत्री शर्मिष्ठा को देवयानी को सौंप दिया और शर्मिष्ठा ने अपनी अन्य हजारों सखियों सहित दासी की तरह उसकी सेवा की।

**तात्पर्य :** प्रारम्भ में हम शर्मिष्ठा तथा देवयानी के विषय में देख चुके हैं कि शर्मिष्ठा की अनेक सखियाँ थीं। अब ये सखियाँ देवयानी की दासी बन गईं। जब किसी लड़की की शादी क्षत्रिय राजा से होती थी तो उसकी सारी सखियों को उसके साथ ससुराल जाने की प्रथा थी। उदाहरणार्थ, जब वसुदेव ने कृष्ण की माता देवकी से विवाह किया तो उन्होंने उसकी छहों बहनों से शादी की और उनकी जितनी सखियाँ थीं वे भी साथ-साथ ससुराल गईं थीं। राजा को न केवल अपनी पत्नी का भरण करना होता था अपितु अपनी पत्नी की अनेक सखियों तथा दासियों का भी पोषण करना पड़ता था। इनमें से कुछ दासियाँ गर्भवती हो जाती थीं तो उनके बच्चे उत्पन्न होते थे। ऐसे बालकों को दासीपुत्र के रूप में स्वीकार किया जाता था और राजा उनका भी भरण करता था। स्त्रियों की जनसंख्या सदैव पुरुषों से अधिक रही है, किन्तु स्त्री को पुरुष द्वारा सुरक्षा प्रदान किए जाने की आवश्यकता होती है अतएव राजा उन अनेक लड़कियों का भरण करता था जो रानी की सखियाँ या दासियाँ होती थीं। कृष्ण को गृहस्थ जीवन में हम १६१०८ पत्नियों से विवाहित पाते हैं। ये दासियाँ नहीं थीं अपितु रानियाँ थीं और कृष्ण ने इनमें से प्रत्येक के भरण-पोषण के लिए उतने ही रूपों में अपना विस्तार किया था। यह सामान्य लोगों के लिए सम्भव नहीं है। अतएव भले ही राजाओं को अनेक दासियों तथा पत्नियों का पालन करना पड़ता रहा हो लेकिन उन सबों के पृथक्-पृथक् निवास नहीं होते थे।

नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशना ।

तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

नाहुषाय—नहुष के पुत्र ययाति को; सुताम्—पुत्री; दत्त्वा—विवाह में देकर; सह—साथ; शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री तथा देवयानी की दासी शर्मिष्ठा के; उशाना—शुक्राचार्य ने; तम्—उस ( राजा से ); आह—कहा; राजन्—हे राजा; शर्मिष्ठाम्—वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को; आधाः—अनुमति दें; तल्पे—अपने बिस्तर में; न—नहीं; कर्हिचित्—कभी भी।

जब शुक्राचार्य ने देवयानी का विवाह ययाति से कर दिया तो उसने शर्मिष्ठा को भी उसके साथ जाने दिया लेकिन राजा को चेतावनी दी “हे राजन, इस शर्मिष्ठा को कभी अपनी सेज में अपने साथ शयन करने की अनुमति मत देना।”

विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सुप्रजां क्वचित् ।

तमेव वब्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; औशनसीम्—शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को; राजन्—हे राजा परीक्षित; शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री ने; सु-प्रजाम्—सुन्दर सन्तान वाली; क्वचित्—किसी समय; तम्—उस ( राजा ययाति ) से; एव—निस्सन्देह; वब्रे—प्रार्थना की; रहसि—एकान्त में; सख्याः—अपनी सखी के; पतिम्—पति को; ऋतौ—उपयुक्त समय पर; सती—उस स्थिति में रहकर।

हे राजा परीक्षित, देवयानी के सुन्दर पुत्र को देखकर एक बार शर्मिष्ठा संभोग के लिए उचित अवसर पर राजा ययाति के पास पहुँची। उसने एकान्त में अपनी सखी देवयानी के पति राजा ययाति से प्रार्थना की कि उसे भी पुत्रवती बनायें।

राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्म चावेक्ष्य धर्मवित् ।

स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥

#### शब्दार्थ

राज-पुत्र्या—शर्मिष्ठा से जो एक राजा की पुत्री थी; अर्थितः—अनुरोध किए जाने पर; अपत्ये—पुत्र लाभ के लिए; धर्मम्—धर्म को; च—भी; अवेक्ष्य—विचार करके; धर्म-वित्—धर्म का ज्ञाता; स्मरन्—स्मरण करते हुए; शुक्र-वचः—शुक्राचार्य की चेतावनी; काले—समय पर; दिष्टम्—संयोगवश; एव—निस्सन्देह; अभ्यपद्यत—( शर्मिष्ठा की इच्छा पूरी करने के लिए ) स्वीकार कर लिया।

जब राजकुमारी शर्मिष्ठा ने राजा ययाति से पुत्र के लिए याचना की तो अपने धर्म से अवगत राजा उसकी इच्छा पूरी करने के लिए राजी हो गया। यद्यपि उसे शुक्राचार्य की चेतावनी स्मरण थी, किन्तु इस मिलन को परमेश्वर की इच्छा मानकर उसने शर्मिष्ठा के साथ संभोग किया।

तात्पर्य : राजा ययाति को क्षत्रिय-धर्म का पूरा-पूरा ज्ञान था। यदि कोई स्त्री क्षत्रिय के पास पहुँचे तो वह उसे ना नहीं कर सकता। यही धर्म का नियम है। इसीलिए जब धर्मराज युधिष्ठिर ने देखा कि द्वारका से लौटने पर अर्जुन अप्रसन्न है तो उन्होंने पूछा कि कहीं उसने पुत्र की कामना से आई हुई किसी स्त्री को ना तो नहीं की। यद्यपि महाराज ययाति को शुक्राचार्य की चेतावनी स्मरण थी, किन्तु वे शर्मिष्ठा से ना नहीं कर

पाये। उन्होंने सोचा कि उसे पुत्र-दान देना बुद्धिमानी होगी; अतएव उन्होंने उसके मासिक-धर्म के बाद उससे संभोग किया। इस प्रकार की भोगेच्छा धर्म के विरुद्ध नहीं है। जैसा कि *भगवद्गीता* (७.११) में कहा गया है—*धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि*—ऐसा विषयी जीवन जो धर्म के विरुद्ध न हो उसकी छूट कृष्ण देते हैं। चूँकि राजपुत्री शर्मिष्ठा ने ययाति से पुत्र-प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की थी इसलिए उनका संयोग विषय-सुख के लिए नहीं था अपितु वह धर्म-कार्य था।

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।  
द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

यदुम्—यदु को; च—तथा; तुर्वसुम्—तुर्वसु को; च एव—तथा; देवयानी—देवयानी ने; व्यजायत—जन्म दिया; द्रुह्यम्—द्रुह्य को; च—तथा; अनुम्—अनु को; च—भी; पूरुम्—पुरु को; च—भी; शर्मिष्ठा—शर्मिष्ठा ने; वार्षपर्वणी—वृषपर्वा की पुत्री।

देवयानी ने यदु तथा तुर्वसु को जन्म दिया और शर्मिष्ठा ने द्रुह्य, अनु तथा पुरु को जन्म दिया।

गर्भसम्भवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ।  
देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

गर्भ-सम्भवम्—गर्भ-धारण; आसुर्याः—शर्मिष्ठा का; भर्तुः—अपने पति से सम्भव बनाया गया; विज्ञाय—जानकर ( ब्राह्मण ज्योतिषियों से ); मानिनी—अत्यन्त गर्वीली; देवयानी—शुक्राचार्य की पुत्री; पितुः—अपने पिता के; गेहम्—घर को; ययौ—गई; क्रोध-विमूर्छिता—क्रोध से मूर्छित।

जब गर्वीली देवयानी बाहरी स्रोतों से जान गई कि शर्मिष्ठा उसके पति से गर्भवती हुई है तो वह क्रोध से मूर्छित हो उठी और वह अपने पिता के घर ( मायके ) चली गई।

प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ।  
न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥

#### शब्दार्थ

प्रियाम्—अपनी प्रियतमा के; अनुगतः—पीछे-पीछे जाकर; कामी—अत्यन्त विषयी; वचोभिः—शब्दों से; उपमन्त्रयन्—खुश करने; न—नहीं; प्रसादयितुम्—प्रसन्न करने के लिए; शेके—समर्थ था; पाद-संवाहन-आदिभिः—उसके पाँव दबाकर के भी।

चूँकि राजा ययाति अत्यन्त विषयी था अतएव वह अपनी पत्नी के पीछे-पीछे हो लिया। उसने उसे पकड़ कर मीठे शब्द कहे तथा उसके पाँव दबाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयास किया, किन्तु वह उसे किसी भी तरह मना न पाया।



शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ।

त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥

**शब्दार्थ**

शुक्रः—शुक्राचार्य; तम्—उस ( राजा ययाति ) से; आह—बोला; कुपितः—उस पर क्रुद्ध होकर; स्त्री-काम—स्त्रियों से विषय-भोग की इच्छा करने वाले; अनृत-पूरुष—हे झूठे व्यक्ति; त्वाम्—तुमको; जरा—वृद्धावस्था, अशक्तता; विशताम्—प्रवेश करे; मन्द—अरे मूर्ख; विरूप-करणी—कुरूप बनाने वाली; नृणाम्—मनुष्यों के शरीरों को ।

शुक्राचार्य अत्यन्त क्रुद्ध थे। उन्होंने कहा, “अरे झूठे! मूर्ख! स्त्रीकामी! तुमने बहुत बड़ी गलती की है। अतएव मैं शाप देता हूँ कि तुम पर बुढ़ापा तथा अशक्तता का आक्रमण हो जिससे तुम कुरूप बन जाओ।”

**श्रीययातिरुवाच**

अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते ।

व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥ ३७ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-ययातिः उवाच—राजा ययाति ने कहा; अतृप्तः—असंतुष्ट; अस्मि—मैं हूँ; अद्य—आज तक; कामानाम्—अपनी विषयवासनाओं को तृप्त करने के लिए; ब्रह्मन्—हे विद्वान् ब्राह्मण; दुहितरि—पुत्री के सम्बन्ध में; स्म—भूतकाल में; ते—तुम्हारी; व्यत्यस्यताम्—आदान-प्रदान करो; यथा-कामम्—जब तक तुम विषयी हो; वयसा—युवावस्था ( जवानी ) से; यः अभिधास्यति—जो तुम्हारी वृद्धावस्था से अपनी युवावस्था को बदलने के लिए इच्छुक हो ।

राजा ययाति ने कहा : “हे विद्वान् पूज्य ब्राह्मण, अभी भी तुम्हारी पुत्री के साथ मेरी कामेच्छाएँ पूरी नहीं हुई।” तब शुक्राचार्य ने उत्तर दिया, “चाहो तो तुम अपने बुढ़ापे को किसी ऐसे व्यक्ति से बदल लो जो तुम्हें अपनी युवावस्था देने को तैयार हो।”

**तात्पर्य :** जब राजा ययाति ने कहा कि उसकी विषय-वासनाएँ शुक्राचार्य की पुत्री के साथ भोग करने से पूरी नहीं हुई तो शुक्राचार्य ने देखा कि यह तो उनकी पुत्री के अहित में है कि ययाति वृद्धावस्था में रहने लगे क्योंकि तब उनकी कामिनी पुत्री की भोगेच्छा पूरी नहीं होगी। अतएव शुक्राचार्य ने अपने दामाद को यह वर दिया कि वह अपने बुढ़ापे को किसी की जवानी से बदल ले। उन्होंने संकेत किया कि यदि ययाति का पुत्र अपनी जवानी देकर ययाति का बुढ़ापा स्वीकार कर ले तो ययाति देवयानी के साथ संभोग कर सकता है।

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ।  
यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥

**शब्दार्थ**

इति—इस प्रकार; लब्ध-व्यवस्थानः—अपना बुढ़ापा बदलने का अवसर पाकर; पुत्रम्—अपने बेटे से; ज्येष्ठम्—सबसे बड़े; अवोचत—प्रार्थना की; यदो—हे यदु; तात—तुम मेरे प्रिय पुत्र हो; प्रतीच्छ—बदल लो; इमाम्—इस; जराम्—बुढ़ापे को, अशक्तता को; देहि—तथा दे दो; निजम्—अपनी; वयः—जवानी ।

जब ययाति को शुक्राचार्य से यह वर प्राप्त हो गया तो उसने अपने सबसे बड़े पुत्र से अनुरोध किया, “हे पुत्र यदु, तुम मेरी वृद्धावस्था तथा अशक्तता के बदले में मुझे अपनी जवानी दे दो।”

मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ।  
वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥

**शब्दार्थ**

मातामह-कृताम्—तुम्हारे नाना शुक्राचार्य द्वारा प्रदत्त; वत्स—मेरे बेटे; न—नहीं; तृप्तः—सन्तुष्ट; विषयेषु—विषयी जीवन में, इन्द्रियतृप्ति में; अहम्—मैं; वयसा—उम्र से; भवदीयेन—तुम्हारी; रंस्ये—विषयभोग का आनन्द लूँगा; कतिपयाः—कुछ; समाः—वर्ष ।

“हे पुत्र, मैं अपनी विषयेच्छाओं से अभी भी तृष्ट नहीं हो पाया। किन्तु यदि तुम मुझ पर दया करो तो अपने नाना द्वारा प्रदत्त बुढ़ापे को ले सकते हो तथा अपनी जवानी मुझे दे सकते हो जिससे मैं कुछ वर्ष और जीवन का भोग कर लूँ।”

तात्पर्य : विषय-वासनाओं की यही प्रकृति है। *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है *कामैस्तेस्तेर्हृतज्ञानाः* जब कोई इन्द्रियतृप्ति के प्रति अत्यधिक अनुरक्त रहता है तो वह वास्तव में अपना ज्ञान खो देता है। *हतज्ञानाः* शब्द ज्ञान खोने वाले का सूचक है। यहाँ ऐसा उदाहरण है जिसमें एक पिता ने निर्लज्जतापूर्वक अपने पुत्र से वृद्धावस्था के बदले अपनी जवानी देने के लिए कहा। निस्सन्देह, सारा संसार ऐसे ही मोह से ग्रस्त है। इसीलिए कहा गया है कि हर व्यक्ति *प्रमत्तः* या पागल है। *नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म* जब मनुष्य उन्मत्त जैसा हो जाता है तो वह विषय-भोग तथा इन्द्रियतृप्ति में लिप्त रहने लगता है। किन्तु विषयभोग तथा इन्द्रियतृप्ति को वश में किया जा सकता है और जब विषयभोग की इच्छा नहीं रह जाती तो मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है। ऐसा तभी सम्भव है जब कोई पूरी तरह कृष्णभावनाभावित हो

*यदवधि मम चेतः कृष्णपादारविन्दे*

*नवनवरसधामन्युद्यतं रन्तुमासीत् ।*

तदवधि बत नारीसङ्गमे स्मर्यमाने

भवति मुखविकारः सुष्ठुनिष्ठीवनं च ॥

“जब से मैं कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा हूँ और नित्य नये आनन्द का अनुभव करने लगा हूँ तब से जब भी मैं विषय-सुख के बारे में सोचता हूँ तो इस विचार पर थूकता हूँ और मेरे होठ घृणा से टेढ़े हो जाते हैं।” विषय-भोग की इच्छा तभी रोकी जा सकती है जब कोई पूरी तरह कृष्णभावनाभावित हो, अन्यथा ऐसा सम्भव नहीं है। जब तक मनुष्य में भोगेच्छा रहती है तब तक उसे शरीर बदल कर विभिन्न योनियों में विषय-सुख भोगने के लिए देहान्तर करना पड़ता है। भले ही योनियाँ या रूप बदल जाए, किन्तु विषय-व्यापार तो जैसे का तैसा रहता है। इसीलिए कहा गया है पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्। जो लोग विषय-भोग में अत्यधिक लिप्त रहते हैं वे देहान्तर करते रहते हैं और उनका एक ही व्यापार रहता है चर्वित-चर्वण करना, अर्थात् कूकरो-सूकरो या देवताओं की तरह विषय-सुख का स्वाद लेना।

श्रीयदुरुवाच

नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव ।

अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-यदुः उवाच—ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु ने उत्तर दिया; न उत्सहे—मैं उत्सुक नहीं हूँ; जरसा—आपके बुढ़ापे तथा अशक्तता से; स्थातुम्—रहने के लिए; अन्तरा—जवानी में; प्राप्तया—स्वीकार किया हुआ; तव—आपका; अविदित्वा—बिना अनुभव किये; सुखम्—सुख; ग्राम्यम्—भौतिक या शारीरिक; वैतृष्ण्यम्—भौतिक सुख से विरक्ति; न—नहीं; एति—प्राप्त करता है; पूरुषः—व्यक्ति।

यदु ने उत्तर दिया: हे पिताजी, यद्यपि आप भी तरुण पुरुष थे, किन्तु आपने वृद्धावस्था प्राप्त कर ली है। किन्तु मुझे आपका बुढ़ापा तथा जर्जरता तनिक भी मान्य नहीं है क्योंकि भौतिक सुख का भोग किये बिना कोई विरक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

तात्पर्य : भौतिक भोग से विरक्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। इसीलिए वर्णाश्रम व्यवस्था अत्यन्त वैज्ञानिक है। इसका लक्ष्य मनुष्य को भगवद्धाम वापस जाने की सुविधा प्रदान करना है जिसे समस्त सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग किये बिना प्राप्त कर सकना असम्भव है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा था निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य जो भगवद्धाम वापस जाना चाहता है उसे निष्किञ्चन होना चाहिए अर्थात् भौतिक भोग के सारे आकर्षणों से मुक्त होना चाहिए। ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्पू पूर्ण विरक्त हुए बिना ब्रह्म में या

भक्ति में स्थिर नहीं हुआ जा सकता। ब्रह्मपद पर ही भक्ति की जा सकती है। अतएव जब तक मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह भक्ति में नहीं लग सकता। अथवा दूसरे शब्दों में, भक्ति में संलग्न व्यक्ति पहले से ब्रह्मपद पर रहता है।

*मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।*

*स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥*

“जो पूरी तरह भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में पतित नहीं होता वह तुरन्त ही प्रकृति के गुणों को पार करके ब्रह्मपद को प्राप्त होता है।” ( *भगवद्गीता* १४.२६ ) अतएव जिसे भक्ति प्राप्त हो जाती है वह निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है। सामान्यतया जब तक कोई व्यक्ति भौतिक सुख का भोग न कर ले तब तक वह वैराग्य प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिए *वर्णाश्रम* क्रमशः उत्थान के लिए अवसर प्रदान करता है। महाराज ययाति के पुत्र यदु ने बतलाया कि वह अपनी जवानी त्याग पाने में असमर्थ है क्योंकि वह इसका उपयोग भविष्य में संन्यास आश्रम प्राप्त करने के लिए करना चाहता है।

महाराज यदु अपने भाइयों से भिन्न थे। जैसा कि अगले श्लोक में कहा गया है *तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत । प्रत्याचख्युरधर्मज्ञाः ।* महाराज यदु के भाइयों ने अपने पिता के प्रस्ताव को मानने से इसलिए मना कर दिया क्योंकि वे धर्म से भलीभाँति अवगत न थे। उन आदेशों को स्वीकार करना जो धर्म का अनुसरण करते हैं, विशेष रूप से पिता के आदेशों का पालन, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतएव जब महाराज यदु के भाइयों ने अपने पिता के आदेश को नहीं माना तो यह सचमुच धर्मविरुद्ध था। किन्तु महाराज यदु द्वारा निषेध धर्मसम्मत था। जैसा कि दशम स्कन्ध में कहा गया है *यदोश्च धर्मशीलस्य* महाराज यदु धर्म के सिद्धान्तों से पूरी तरह अवगत थे। धर्म का चरम सिद्धान्त अपने को भगवान् की भक्ति में लगाना है। महाराज यदु स्वयं को भगवान् की सेवा में लगाने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे, किन्तु एक अवरोध था जवानी में भौतिक इन्द्रियों के भोगने की इच्छा, निश्चय ही, होती है और जब तक इन इच्छाओं को जवानी में पूरी तरह तुष्ट नहीं कर लिया जाता तब तक भगवान् की सेवा करने में विघ्न उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है। हम ने वास्तव में देखा है कि ऐसे अनेक संन्यासी जो अपरिपक्वावस्था में संन्यास ग्रहण कर लेते हैं अपनी भौतिक इच्छाओं को तुष्ट न किये रहने के कारण विचलित होकर भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए

सामान्य नियम यह है कि संन्यास के पूर्व गृहस्थ-जीवन तथा वानप्रस्थ-जीवन बिताया जाये और अन्त में संन्यास ग्रहण करके भगवान् की सेवा में पूरी तरह संलग्न हुआ जाये। महाराज यदु अपने पिता के आदेश को मानने और वृद्धावस्था के बदले जवानी देने के लिए तैयार थे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यह जवानी उनके पिता लौटा देंगे। लेकिन इस आदान-प्रदान से उनकी अनन्य भक्ति में विलम्ब होता। अतएव वे अपने पिता की वृद्धावस्था को स्वीकार नहीं करना चाहते थे क्योंकि वे निर्विघ्न स्वतंत्रता चाहते थे। साथ ही, यदुवंशियों में ही भगवान् कृष्ण को जन्म लेना था और महाराज यदु उत्सुक थे कि भगवान् का प्राकट्य यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र हो। इसीलिए उन्होंने अपने पिता के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। यह धर्म-विहीन नहीं था क्योंकि यदु का उद्देश्य भगवान् की सेवा करना था। चूँकि यदु भगवान् के आज्ञाकारी दास थे, इसलिए कृष्ण ने उनके वंश में जन्म लिया। जैसा कि कुन्ती की प्रार्थना से पुष्टि होती है यदोः प्रियस्यान्ववाये। यदु कृष्ण को अत्यन्त प्रिय थे अतएव वे यदु वंश में अवतार लेने के लिए उत्सुक थे। निष्कर्षतः महाराज यदु को अधर्म-ज्ञ नहीं मानना चाहिए जैसा कि अगले श्लोक में उनके भाइयों के लिए कहा गया है। वे (यदु) चार सनक कुमारों (चतुःसन) की भाँति थे जिन्होंने उत्तम कार्य के लिए अपने पिता ब्रह्मा के आदेशों को टुकरा दिया। चूँकि चारों कुमार ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् की सेवा करना चाहते थे अतएव उनके द्वारा पिता की आज्ञा को न मानना अधर्म नहीं था।

तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्यश्चानुश्च भारत ।

प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥

#### शब्दार्थ

तुर्वसुः—तुर्वसु, दूसरा पुत्र; चोदितः—निवेदन किये जाने पर; पित्रा—पिता द्वारा ( बुढ़ापे और अशक्तता को जवानी से बदलने के लिए ); द्रुह्युः—द्रुह्यु एक और पुत्र; च—तथा; अनुः—एक और पुत्र अनु ने; च—भी; भारत—हे राजा परीक्षित; प्रत्याचख्युः—मानने से मना कर दिया; अधर्म-ज्ञाः—धर्म के सिद्धान्तों को न जानने वाले; हि—निस्सन्देह; अ-नित्ये—नाशवान जवानी; नित्य-बुद्धयः—नित्य मानकर।

हे महाराज परीक्षित, ययाति ने इसी तरह अन्य पुत्रों से तुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनु से वृद्धावस्था के बदले अपनी जवानी देने के लिए निवेदन किया लेकिन वे सभी अधर्मज्ञ थे इसलिए उन्होंने सोचा कि उनकी नाशवान जवानी शाश्वत है अतएव उन्होंने अपने पिता के आदेश को मानने से मना कर दिया।

अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ।  
न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥

**शब्दार्थ**

अपृच्छत्—निवेदन किया; तनयम्—पुत्र; पूरुम्—पूरु से; वयसा—आयु से; ऊनम्—यद्यपि कम; गुण-अधिकम्—किन्तु गुणों में अन्यो से बढ़कर; न—नहीं; त्वम्—तुम; अग्रज-वत्—अपने बड़े भाइयों के समान; वत्स—हे पुत्र; माम्—मुझको; प्रत्याख्यातुम्—मना करना; अर्हसि—चाहिए।

तत्पश्चात् राजा ययाति ने पूरु से, जो अपने इन तीनों भाइयों से उम्र में छोटा था किन्तु अधिक योग्य था, इस तरह निवेदन किया, “हे पुत्र, तुम अपने बड़े भाइयों की तरह अवज्ञाकारी मत बनो क्योंकि यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं है।”

**श्रीपूरुवाच**

को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ।  
प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विन्दते परम् ॥ ४३ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-पूरुः उवाच—पूरु ने कहा; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; लोके—इस संसार में; मनुष्य-इन्द्र—मनुष्यों में श्रेष्ठ, हे महाराज; पितुः—पिता; आत्म-कृतः—इस शरीर को देने वाले; पुमान्—व्यक्ति; प्रतिकर्तुम्—चुकता करने के लिए; क्षमः—समर्थ है; यस्य—जिसकी; प्रसादात्—कृपा से; विन्दते—भोगता है; परम्—श्रेष्ठ जीवन।

पूरु ने उत्तर दिया, “हे महाराज, ऐसा कौन होगा जो अपने पिता के ऋण से उऋण हो सके? पिता की ही कृपा से मनुष्य को मनुष्य-जीवन प्राप्त होता है जिससे वह भगवान् का संगी बनने में सक्षम हो सकता है।

**तात्पर्य :** पिता शरीर का बीजदाता है और यह बीज क्रमशः विकसित होकर मनुष्य का विकसित रूप धारण करता है जिसमें पशुओं की अपेक्षा उच्चतर चेतना होती है। इस मनुष्य-शरीर से मनुष्य स्वर्ग जा सकता है और यदि कोई कृष्णभावनामृत का विकास करे तो वह भगवद्धाम वापस जा सकता है। यह महत्त्वपूर्ण मानव शरीर पिता के अनुग्रह से प्राप्त होता है; अतएव हर व्यक्ति अपने पिता का ऋणी होता है। निस्सन्देह, दूसरी योनियों में भी उसे माता-पिता मिलते हैं, यहाँ तक कि कुत्ते-बिल्लियों के भी माता-पिता होते हैं। किन्तु मनुष्य-जीवन में पुत्र के माता-पिता जो सबसे बड़ा वर दे सकते हैं वह उसे भक्त बनने की शिक्षा है। जब कोई भक्त बन जाता है तो उसे सबसे बड़ा वर प्राप्त होता है क्योंकि वह जन्म-मरण के चक्र से बच जाता है। अतएव जो पिता अपनी सन्तान को कृष्णभक्त बनने का प्रशिक्षण देता है वही इस संसार में सबसे बड़ा उपकारी पिता है। कहा गया है :

जनमे जनमे सबे पितामाता पाय ।

कृष्ण गुरु नहि मिले भज हरि एइ ॥

माता पिता तो हर एक को मिलते हैं, किन्तु यदि मनुष्य को कृष्ण तथा गुरु का वर प्राप्त हो जाय तो वह भौतिक प्रकृति को जीत सकता है और भगवद्धाम वापस जा सकता है ।

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।

अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४ ॥

#### शब्दार्थ

उत्तमः—सर्वश्रेष्ठ; चिन्तितम्—पिता के विचार को मानते हुए; कुर्यात्—तदनुसार कर्म करता है; प्रोक्त-कारी—जो अपने पिता के आदेशानुसार कार्य करता है; तु—निस्सन्देह; मध्यमः—बीच की कोटि के; अधमः—निम्न श्रेणी के; अश्रद्धया—श्रद्धाविहीन; कुर्यात्—करता है; अकर्ता—न करने की इच्छा से युक्त; उच्चरितम्—मल के समान; पितुः—पिता के ।

“जो पुत्र अपने पिता की इच्छा को जानकर उसी के अनुसार कर्म करता है वह प्रथम श्रेणी का ( उत्तम ) होता है; जो अपने पिता की आज्ञा पाकर कार्य करता है वह द्वितीय श्रेणी का ( मध्यम ) होता है और जो पुत्र अपने पिता के आदेश का पालन अनादरपूर्वक करता है वह तृतीय श्रेणीका ( अधम ) होता है । किन्तु जो पुत्र अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह अपने पिता के मल के समान है ।”

तात्पर्य : ययाति के सबसे छोटे पुत्र पूरु ने तुरन्त ही अपने पिता के प्रस्ताव को मान लिया क्योंकि वह छोटा होने पर भी अत्यन्त योग्य था । पूरु ने सोचा, “मुझे तो पिता के प्रस्ताव को उनके कहने के पूर्व ही मान लेना चाहिए था, किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया । अतएव मैं उत्तमश्रेणी का पुत्र नहीं हूँ, मैं तो मध्यम कोटि का पुत्र हूँ । किन्तु मैं अधमतम श्रेणी का पुत्र नहीं बनना चाहता जो पिता के मल के समान होता है ।” एक भारतीय कवि ने पुत्र और मूत्र के बारे में कहा है । ‘पुत्र’ का अर्थ होता है ‘बेटा’ और ‘मूत्र’ का अर्थ है ‘पेशाब’ । पुत्र तथा मूत्र दोनों एक ही अंग से निकलते हैं । यदि पुत्र भगवान् का आज्ञाकारी भक्त हो तो वह पुत्र अर्थात् असली बेटा है अन्यथा अविद्वान तथा अभक्त पुत्र मूत्र के तुल्य होता है ।

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ।

सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुषे नृप ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

इति—इस तरह; प्रमुदितः—अत्यन्त हर्षित; पूरुः—पूरु ने; प्रत्यगृह्णात्—स्वीकार कर लिया; जराम्—वृद्धावस्था को; पितुः—पिता की; सः—उस पिता ने; अपि—भी; तत्-वयसा—अपने पुत्र की जवानी से; कामान्—सारी इच्छाओं को; यथा-वत्—आवश्यकतानुसार; जुजुषे—तुष्य किया; नृप—हे महाराज परीक्षित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा: हे महाराज परीक्षित, इस तरह पूरु अपने पिता ययाति की वृद्धावस्था को ग्रहण करके अत्यन्त हर्षित था। पिता ने अपने पुत्र की जवानी ग्रहण कर ली और फिर इच्छानुसार इस भौतिक जगत का भोग किया।

सप्तद्वीपपतिः संयक्पितृवत्पालयन्प्रजाः ।

यथोपजोषं विषयाञ्जुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ

सप्त-द्वीप-पतिः—सात द्वीपों वाले समस्त विश्व का स्वामी; संयक्—पूरी तरह; पितृ-वत्—पिता के समान; पालयन्—शासन करते हुए; प्रजाः—प्रजा; यथा-उपजोषम्—जी भरकर; विषयान्—भौतिक सुख को; जुजुषे—भोगा; अव्याहत—किसी व्यवधान के बिना; इन्द्रियः—अपनी इन्द्रियों को।

तत्पश्चात् राजा ययाति सात द्वीपों वाले विश्व का शासक बन गया और प्रजा पर पिता के समान शासन करने लगा। चूँकि उसने अपने पुत्र की जवानी ले ली थी अतएव उसकी इन्द्रियाँ अक्षत थीं और उसने जी भरकर भौतिक सुख का भोग किया।

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ।

प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥

#### शब्दार्थ

देवयानी—महाराज ययाति की पत्नी, शुक्राचार्य की बेटी ने; अपि—भी; अनुदिनम्—दिन प्रति दिन, चौबीसों घंटे; मनः-वाक्—अपने मन तथा वाणी; देह—शरीर; वस्तुभिः—सारी आवश्यक वस्तुओं से; प्रेयसः—अपने प्रिय पति का; परमाम्—दिव्य; प्रीतिम्—आनन्द; उवाह—सम्पन्न किया; प्रेयसी—अपने पति की अत्यन्त प्यारी; रहः—एकान्त में, बिना किसी उत्पात के।

महाराज ययाति की प्रेयसी देवयानी अपने मन, वचन, शरीर तथा विविध सामग्री से सदैव एकान्त में अपने पति को यथासम्भव दिव्य परमानन्द प्रदान करती रही।

अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।

सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥

#### शब्दार्थ

अयजत्—पूजा की; यज्ञ-पुरुषम्—यज्ञपुरुष या भगवान् की; क्रतुभिः—विविध यज्ञों द्वारा; भूरि-दक्षिणैः—ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा देकर; सर्व-देव-मयम्—सारे देवताओं के आगार; देवम्—परमेश्वर को; सर्व-वेद-मयम्—सारे वैदिक ज्ञान के परम लक्ष्य; हरिम्—भगवान् हरि को।



राजा ययाति ने विविध यज्ञ सम्पन्न किये और उनमें उन्होंने समस्त देवताओं के आगार एवं समस्त वैदिक ज्ञान के लक्ष्य भगवान् हरि को तुष्ट करने के लिए ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणाएँ दीं।

यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ।

नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥

#### शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें; इदम्—यह पूरा विशाल जगत; विरचितम्—उत्पन्न; व्योम्नि—आकाश में; इव—सदृश; जलद-आवलिः—बादल; नाना इव—मानों विभिन्न प्रकार के; भाति—प्रकट होता है; न आभाति—प्रकट नहीं होता है; स्वप्न-माया—मोह जो स्वप्न की तरह है; मनः-रथः—मन रूपी रथ द्वारा चलने वाला।

भगवान् वासुदेव, जिन्होंने विराट जगत की सृष्टि की है, अपने को सर्वव्यापक रूप में प्रकट करते हैं जिस तरह आकाश बादलों को धारण करता है। जब इस सृष्टि का संहार हो जाता है तब सारी वस्तुएँ भगवान् विष्णु में प्रवेश करती हैं और सारे भेद-प्रभेद समाप्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : जैसा कि स्वयं भगवान् ने भगवद्गीता (७.१९) में कहा है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

“अनेकानेक जन्म-मरण के बाद जो वास्तव में ज्ञानी है वह मुझी को समस्त कारणों का कारण जानते हुए मेरी शरण में आता है। ऐसा महापुरुष अत्यन्त विरला होता है।” भगवान् वासुदेव परब्रह्म हैं। प्रारम्भ में सारी वस्तुएँ उन्हीं में रहती हैं और अन्त में सब कुछ उन्हीं में प्रवेश कर जाता है। वे हर एक के हृदय में स्थित हैं ( सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः )। उन्हीं से सारी वस्तुएँ उद्भूत हैं। ( जन्माद्यस्य यतः ), किन्तु सारी भौतिक वस्तुएँ क्षणिक या नाशवान हैं। स्वप्न, माया तथा मनोरथ क्षणिक हैं। इसी प्रकार सारी भौतिक सृष्टि भी क्षणिक है लेकिन भगवान् वासुदेव, जो परब्रह्म हैं, शाश्वत हैं।

तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ।

नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥

#### शब्दार्थ

तम् एव—उसको ही; हृदि—हृदय में; विन्यस्य—रखकर; वासुदेवम्—भगवान् वासुदेव को; गुह-आशयम्—सबके हृदय में विद्यमान रहने वाले; नारायणम्—नारायण या नारायण के अंश को; अणीयांसम्—सर्वत्र उपस्थित रहकर भी आँखों से अदृश्य; निराशीः—बिना किसी भौतिक इच्छा के ययाति ने; अयजत्—पूजा की; प्रभुम्—परमेश्वर की।

महाराज ययाति ने उन भगवान् की निष्काम भाव से पूजा की जो हर एक के हृदय में नारायण रूप में स्थित हैं और सर्वत्र विद्यमान रहकर भी आँखों से अदृश्य रहते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि राजा ययाति ऊपर से भौतिक भोग के परम इच्छुक प्रतीत होते थे, किन्तु भीतर भीतर वे भगवान् का नित्य दास बनने के इच्छुक थे।

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ।

विदधानोऽपि नातृष्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; वर्ष-सहस्राणि—एक हजार वर्षों तक; मनः-षष्ठैः—पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के द्वारा; मनः-सुखम्—मन द्वारा उत्पन्न क्षणिक सुख; विदधानः—सम्पन्न करते हुए; अपि—यद्यपि; न अतृष्यत्—संतुष्ट नहीं हुए; सार्व-भौमः—सारे जगत का राजा होकर भी; कत्-इन्द्रियैः—अशुद्ध इन्द्रियों के कारण।

यद्यपि महाराज ययाति सारे विश्व के राजा थे और उन्होंने एक हजार वर्षों तक अपने मन तथा पाँच इन्द्रियों को भौतिक सम्पत्ति को भोगने में लगाया, किन्तु वे सन्तुष्ट नहीं हो सके।

तात्पर्य : कद्-इन्द्रिय अर्थात् अशुद्ध इन्द्रियों को शुद्ध किया जा सकता है यदि इन्द्रियों और मन को कृष्णभावनामृत में लगाया जाय। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्। मनुष्य को समस्त उपाधियों से मुक्त हो जाना चाहिए। जब तक वह अपने को भौतिक जगत का भोक्ता मानता है तब तक उसकी इन्द्रियाँ अशुद्ध रहती हैं। किन्तु जिस क्षण से उसे आध्यात्मिक अनुभूति हो जाती है और वह अपने को भगवान् के दास के रूप में पहचानता है तो उसकी इन्द्रियाँ तुरन्त शुद्ध हो जाती हैं। शुद्ध की हुई इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाना भक्ति कहलाता है। हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते। कोई भले ही हजारों वर्षों तक इन्द्रियों का भोग क्यों न करे, जब तक वह इन्द्रियों को शुद्ध नहीं कर लेता तब तक वह सुखी नहीं हो सकता।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत “राजा ययाति को यौवन की पुनःप्राप्ति” नामक अठारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।